THE HINDU

Date: 24-04-26

High heat

India must address the underlying vulnerability to hot weather

Editorial

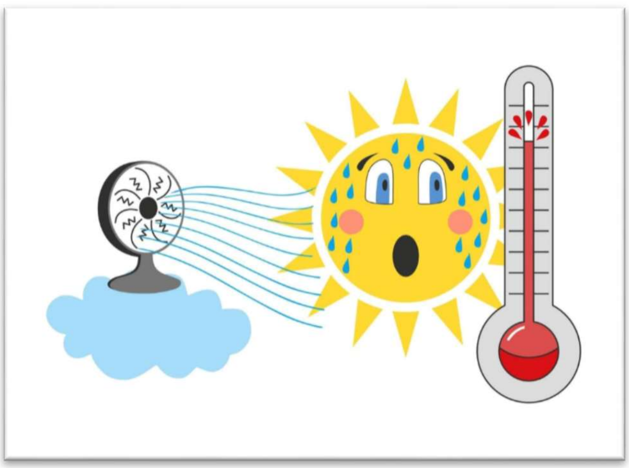

India's summers are known to be hot, but this year the high heat has arrived noticeably early. The India Meteorological Department has sounded heat alerts in central and south India, including in Vidarbha, Chhattisgarh, Odisha, Telangana and Kerala. Parts of Andhra Pradesh and Gujarat have also scaled the 40°C mark, with Tamil Nadu and Karnataka not far behind. Local conditions in coastal areas, in particular, could be worse due to humidity and the urban heat island effect. Warmer nights also delay physiological recovery, increasing the local health-care burden. Such temperatures are usually encountered in May-June but have become apparent in April. While pre-monsoon heatwaves are common in India, they are becoming larger and more intense. This year, a lack of western disturbances and thunderstorms, along with lower convective activity, has also done away with natural cooling, with residual effects of the previous El Niño adding to the heat. Persistently high heat is linked to a significantly higher risk of death from cardiovascular causes. Some 247 billion work-hours were lost in 2024 to heat, according to The Lancet Countdown Global Report, with workers in construction and agriculture the most affected. Heat stress is an ongoing concern for farmers during the rabi harvest. Hot weather accelerates crop maturity, threatening food security and feeding inflationary pressure.

Experts have complained that most heat action plans (HAPs) — India's primary institutional response to heat — focus on emergency response and lack funds for structural interventions such as urban re-greening and mandatory heat-safety legislation for workers in the informal sector. They have thus failed to address underlying vulnerabilities. On April 23, in the Tamil Nadu and West Bengal polls, and Gujarat and Maharashtra by-elections, lakhs of electors had to brave the heat. Concerns about voter turnout in the heat prompted the Election Commission of India to keep polling booths open longer during the 2024 general election; such reactive measures alone will not suffice this year. If warming continues along current trajectories, more than a few parts of India will begin approaching human survivability limits. HAPs desperately need sufficient, long-term funding while public systems must roll out mobile health units and doorstep delivery of essential services during peak heat to reduce the income penalties that deter access. Colombia has convened a coalition of roughly 50 countries to explore a faster transition away from fossil

fuels in a parallel 'climate conference'. India should join it, not least because of the greater access to climate adaptation finance it could afford.

Date: 24-04-26

एआई के आंकड़ों और तथ्यों को लेकर निश्चिंत न रहें

संपादकीय

यह निर्विवाद सत्य है कि दुनिया में फिलहाल लोकप्रिय 11 प्रमुख इंटरेक्टिव एआई वैरिएंट्स से ज्ञान की उपलब्धता बेहद सहज और सस्ती हो गई है। यानी ज्ञान अब मात्र उच्चवर्गीय सम्पदा नहीं रही। अब कोई भी ज्ञान बगैर किसी लाइब्रेरी में घंटों समय बिताए क्षण में मिलने लगा है। लेकिन इसे अंतिम और पूर्ण मान लेना और उनके अनुसार भविष्य की परियोजनाएं बना लेना खतरनाक साबित हो सकता है। एक ही नाम के दो अहम लोगों के बारे में एआई ज्ञान गलत पाए जा रहे हैं। जब तथ्य बताया जाता है तो एआई उसी विनम्रता से तत्काल अपनी गलती सुधारता भी है। लिहाजा ऐसे तथ्यों को अन्य स्रोतों से जरूर जांचें। एआई को वही तथ्य हासिल हैं, जो रिकॉर्ड्स या डिजिटल फॉर्म में उपलब्ध हैं। एआई स्वीकारता है कि उसकी ट्रेनिंग ना कहने की नहीं है। यूजर के साथ बातचीत में अति-विनम्रता की ट्रेनिंग के कारण अक्सर चाटुकारिता की ध्वनि भी आने लगती है। दरअसल रीइन्फोर्समेंट लर्निंग फ्रॉम ह्यूमन फीडबैक की ट्रेनिंग के कारण एआई यूजर से काफी सहमति रखता है ताकि ज्यादा से ज्यादा फीडबैक मिले। स्कूली बच्चों से लेकर बड़े शोधकर्ता, उत्पादन इकाइयां, किसान और सेवा क्षेत्र एआई ज्ञान से लाभान्वित जरूर हो रहे हैं, लेकिन वे आंकड़ों और तथ्यों को लेकर निश्चिंत न रहें। एआई को सटीक आंकड़े नहीं दिए जाएं तो अनर्थ भी हो सकता है।

Date: 24-04-26

प्रतिस्पर्धी लोकतंत्र में भी कुछ क्षण पूरे राष्ट्र के लिए होते हैं

पवन के. वर्मा, (पूर्व राज्यसभा सांसद व राजनयिक)

18 अप्रैल को प्रधानमंत्री ने 'राष्ट्र के नाम सम्बोधन' दिया था। उन्हें ऐसा करने का पूरा अधिकार है, क्योंकि वे सरकार के प्रमुख हैं। लेकिन वे पूरे देश के प्रधानमंत्री भी हैं। उनका पद दलगत नहीं; संवैधानिक है। इसलिए राष्ट्र के नाम सम्बोधन

से एक अलिखित किंतु अपेक्षित सिद्धांत का पालन करने की उम्मीद की जाती है। वो सिद्धांत यह है कि ऐसे सम्बोधन को दलगत राजनीति के प्रसंगों से परे होना चाहिए। उसे नागरिकों को नागरिकों के ही रूप में सम्बोधित करना चाहिए, मतदाताओं के रूप में नहीं। साथ ही उसे समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना चाहिए और परिप्रेक्ष्यों को स्पष्ट करना चाहिए।

परम्परागत रूप से, ऐसे सम्बोधन राष्ट्रीय महत्व के क्षणों में ही दिए जाते रहे हैं : युद्ध, आर्थिक संकट, महामारियां, प्राकृतिक आपदाएं या महत्वपूर्ण नीतिगत घोषणाएं। जब पं. जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर राष्ट्र को सम्बोधित किया था, तो उनके उस उद्बोधन में एक सभ्यतागत-संक्रमण की मार्मिक अभिव्यक्ति थी। जब इंदिरा गांधी ने 1971 के युद्ध के दौरान राष्ट्र को सम्बोधित किया था, तो वह संघर्ष के उस काल में देश को स्थिर करने के लिए था। हाल के सालों में, वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान मनमोहन सिंह या कोविड-19 महामारी की शुरुआत में नरेंद्र मोदी के भाषण भी लोगों को सूचित, आश्वस्त और एकजुट करने के उद्देश्य से ही प्रसारित किए गए थे।

किंतु जब राष्ट्र के नाम सम्बोधन का उपयोग विपक्ष की आलोचना करने के लिए किया जाता है तो यह सामान्य शिष्टाचार के साथ ही संवैधानिक नैतिकता के औचित्यों पर भी प्रश्न खड़े करता है। यूं तो वैधानिक रूप से, राष्ट्र के नाम सम्बोधन की अंतर्वस्तु निर्धारित करने वाला कोई विशिष्ट कानून नहीं है। संविधान भी इस विषय पर मौन ही है। लेकिन लोकतंत्र कानूनों के साथ ही परम्पराओं से भी संचालित होता है और ये वो अनिवार्य मर्यादाएं हैं, जो संस्थागत अखंडता को अक्षुण्ण रखती हैं। भारत के प्रधानमंत्री नि:संदेह एक राजनेता भी होते हैं। वे किसी दल का नेतृत्व करते हैं, चुनाव लड़ते हैं और प्रतिद्वंद्वी राजनीति में यथाशक्ति संलग्न रहते हैं। लेकिन जब वे राष्ट्र को सम्बोधित करते हैं, तब उनकी यह भूमिका बदल जाती है।

ऐसा नहीं होने पर राज्यसत्ता और राजनीतिक दल, सरकार और सत्तारूढ़-व्यवस्था के बीच की रेखा धुंधलाने का जोखिम पैदा होता है। यह कोई मामूली अंतर नहीं है; यह लोकतांत्रिक निष्पक्षता के सारतत्व तक जाता है। ऐसे सम्बोधनों के लिए उपयोग किए जाने वाले प्रसारण माध्यम भी- फिर चाहे वह दूरदर्शन हो या ऑल इंडिया रेडियो- सार्वजनिक संसाधन होते हैं। वे करदाताओं के धन से संचालित होते हैं और पूरे राष्ट्र की निष्पक्ष सेवा के लिए होते हैं।

साथ ही, यह सम्बोधन उस समय दिया गया था, जब पश्चिम बंगाल या तमिलनाडु जैसे राज्यों में चुनावों की पूर्व संध्या पर आदर्श आचार संहिता लागू थी। इसकी निगरानी निर्वाचन आयोग करता है। यह संहिता चुनावों के दौरान समान अवसर सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई है। यह आधिकारिक तंत्र, सार्वजनिक धन और सरकारी मंचों के अवांछनीय उपयोग पर रोक लगाती है। ऐसे उल्लंघनों पर अंकुश लगाने में निर्वाचन आयोग पर्याप्त सक्षम है। वह परामर्श जारी कर सकता है, स्पष्टीकरण मांग सकता है और आवश्यकता पड़ने पर उन गतिविधियों की निंदा भी कर सकता है, जो समान अवसर के सिद्धांत को कमजोर करने वाली होती हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि वह भविष्य के लिए दिशा-निर्देश तय कर सकता है, ताकि ऐसी प्रवृत्तियों को हतोत्साहित किया जा सके।

ऐसे मानदंडों में आधिकारिक सम्बोधनों और राजनीतिक भाषणों के बीच स्पष्ट अंतर करना; राष्ट्रीय प्रसारणों में पक्षधर सामग्री पर प्रतिबंध और चुनावी अवधि के दौरान यह सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा उपाय शामिल हो सकते हैं कि सार्वजनिक प्रसारण मंचों का उपयोग राजनीतिक लाभ के लिए न हो। ये अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक निष्पक्षता की रक्षा के प्रयास हैं। वास्तव में, निर्वाचन आयोग और अन्य राजनीतिक दलों से परामर्श करके

प्रधानमंत्री कार्यालय स्वयं राष्ट्रीय सम्बोधनों के लिए आचार-संहिता निर्धारित करने की पहल कर सकता है। इससे इस कार्यालय की गरिमा ही ऊंची होगी।

जब प्रधानमंत्री राष्ट्र को सम्बोधित करते हैं, तो वे एक ऐसे मंच पर होते हैं, जो राजनीति से ऊपर है। तब उनके शब्दों में समावेश, संयम और उत्तरदायित्व का प्रतिबिम्ब झलकना अपेक्षित है। एक प्रतिस्पर्धी लोकतंत्र में भी कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जो पूरे राष्ट्र के लिए होते हैं। राष्ट्र के नाम सम्बोधन भी ऐसा ही एक क्षण है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 24-04-26

वैश्विक व्यापार के लिए कठिन समय की आहट

मिहिर शर्मा

अपने सबसे संकरे स्थान पर होर्मुज स्ट्रेट की चौड़ाई 40 किलोमीटर से भी कम है। सामान्य समय में इस संकरे मार्ग के भीतर दो सावधानीपूर्वक निर्धारित गलियारों से 100 से अधिक जहाज गुजरते हैं लेकिन वे केवल तेल और गैस के रूप में ही करोड़ो डॉलर मूल्य का माल ले जाते हैं। जहाज यातायात के लिहाज से जिब्राल्टर स्ट्रेट और डोवर स्ट्रेट अभी भी अधिक व्यस्त हैं। डोवर, ताइवान स्ट्रेट तथा लाल सागर के मुहाने पर स्थित बाब-अल-मंदेब से लगभग समान मूल्य का माल गुजरता है। और इन सभी की तुलना में मलक्का स्ट्रेट बहुत बड़ा प्रतीत होता है, जहां से वैश्विक व्यापार का करीब 30 फीसदी हिस्सा गुजरता है।

परंतु जैसा कि दुनिया को आभास हो रहा है, इनमें से किसी भी मार्ग पर यात्रा पर प्रतिबंध वैश्विक स्तर पर परस्पर जुड़ी अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। इजरायल और अमेरिका द्वारा हमले के बाद ईरान द्वारा होर्मुज स्ट्रेट को बंद कर देने से दुनिया भर के देशों में संकट जैसी स्थिति पैदा हो गई है। भारत में इसका तात्कालिक प्रभाव रसोई गैस की कीमत और उपलब्धता को लेकर चिंता बढ़ाने के रूप में सामने आया है। लेकिन समय के साथ अन्य प्रभाव भी महसूस होने लगेंगे। उदाहरण के लिए, अमोनिया और यूरिया की कमी के कारण खाद की आपूर्ति घट सकती है। मौजूदा विश्व में आपूर्ति श्रृंखलाओं की जटिलता का मतलब यह है कि लगभग सभी क्षेत्र दूरस्थ महासागरों में नौ वहन की स्वतंत्रता पर निर्भर करते हैं। यदि होर्मुज स्ट्रेट पूरी तरह नहीं खुलता है, तो भारत में पॉलिएस्टर निर्माता प्रभावित होंगे, क्योंकि वर्तमान में लगभग 100 फीसदी एथिलीन ग्लाइकॉल होर्मुज से जुड़ा हुआ है। उद्योग का कहना है कि संकट के शुरुआती हफ्तों में फाइबर की कीमतें 30 फीसदी या उससे अधिक बढ़ गईं और रंगों तथा सहायक कच्चे माल की कीमतें 15 से 30 फीसदी तक बढ़ीं। इस्पात उद्योग ने बताया कि भारत के चूना पत्थर फ्लक्स आयात का करीब 80 फीसदी हिस्सा रस अल खैमाह अमीरात में स्थित मीना साकर

बंदरगाह से आता है, जो होमुंज के ठीक दक्षिण-पश्चिम में है। इसी तरह सल्फ्यूरिक एसिड, जो विशिष्ट रसायनों के उत्पादन और इस प्रकार महत्त्वपूर्ण खनिजों के प्रसंस्करण आदि के लिए आवश्यक है, वह भी इन्हीं रास्तों पर निर्भर है।

दूसरे शब्दों में, यदि आप होमुंज स्ट्रेट को बंद कर देते हैं, तो आप दुनिया को बंधक बना सकते हैं। ईरान की यही कोशिश है और वह कुछ हद तक सफल भी हो रहा है। यह स्पष्ट है कि उसने अभी तक पूरी ताकत नहीं लगाई है। यमन में अपने हूती सहयोगियों के माध्यम से, वह लाल सागर से होने वाले व्यापार को भी सीमित कर सकता है।

यह सवाल बनता है कि आखिर अमेरिका ने इस संभावना का पूर्वानुमान क्यों नहीं लगाया। आंशिक रूप से, संभवतः यह वर्तमान प्रशासन की सामान्य अक्षमता और अति आत्मविश्वास का परिणाम है। लेकिन कुछ हद तक शायद इसलिए भी कि आज की दुनिया में हम इस विचार के अभ्यस्त नहीं है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण जलमार्ग बंद हो सकते हैं। खुला और स्वतंत्र नौवहन दशकों से सामान्य रहा है, और इसने वैश्विक, जुड़ी हुई व्यापारिक अर्थव्यवस्था के निर्माण की अनुमति दी है, जो हर जगह जीवन स्तर और समृद्धि में सहयोग करती है।

लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से, यह एक अनोखा विशेषाधिकार है जो हमें पिछले दशकों में मिला है। हमारे वर्तमान युग से पहले इन महत्त्वपूर्ण जलमार्गों पर नियंत्रण के लिए संघर्ष होता था, क्योंकि वह धन, जो आज उपभोक्ता कल्याण का समर्थन करता है, पहले उन लोगों की विलासिताओं में लगता था जो इन स्ट्रेट की देखरेख करने वाले किलों या महलों के स्वामी थे। पूर्व में पुर्तगाली साम्राज्य का निर्माण 16वीं शताब्दी की शुरुआत में ऐसे स्थानों पर कब्जा करने के इर्द-गिर्द हुआ था मलक्का, अदन और होर्मुज। करीब एक सदी या जितने समय तक उन्होंने होर्मुज पर शासन किया, वहां का उनका आश्रित राज्य असाधारण रूप से समृद्ध बताया जाता था, जो जहाजों से वसूले गए शुल्कों के माध्यम से इस शान-शौकत का खर्च उठा सकता था। मलक्का में, पुर्तगालियों ने स्थानीय सुल्तानों द्वारा संचालित मौजूदा शुल्क प्रणाली को अपने हाथ में ले लिया, जो 5-8 फीसदी का पारगमन कर लगाती थी। यह उस समय के लिए अपेक्षाकृत कम था। जब तक यह पारदर्शी रूप से लागू होता व्यापार भी शिकायत नहीं करते थे और स्थानीय अधिकारी जलमार्गों को समुद्री डाकुओं से मुक्त रखने का अच्छा काम करते। बेशक, कुछ लोग कह सकते हैं कि ये अधिकारी और साम्राज्य स्वयं बेहतर कपड़े पहने समुद्री लुटेरों से अधिक कुछ नहीं थे।

जब ईरान और अमेरिका दावा करते हैं कि स्थानीय नौ सैनिक शक्तियों के रूप में उन्हें उन क्षेत्रों से गुजरने वाले जहाजों पर शुल्क लगाने का अधिकार है जिन्हें वे नियंत्रित करते हैं, तो वे उन्हीं संकरे मार्गों का केवल मुद्रीकरण कर रहे हैं, जैसा कि विभिन्न देशों ने अतीत में किया है। आज हमें यह साझा मानदंडों का उल्लंघन प्रतीत होता है, तो यह पिछली शताब्दी की विशिष्ट उपलब्धियों का ही प्रतिबिंब है, और हमें इस बात पर विचार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए कि ऐसे सिद्धांतों पर आधारित कोई भी समृद्धि कितनी भंगुर होती है।

जब जापान के पूर्व प्रधानमंत्री शिंजो आबे ने अपने देश की 'मुक्त और खुले हिंद-प्रशांत' की इच्छा को परिभाषित किया था, तो इसका कारण यह था कि उन्होंने इस नाजुकता को पहचाना था, और यह भी कि चीनी आक्रामकता विशेष रूप से ताइवान स्ट्रेट या फर्स्ट आइलैंड चेन के अन्य संकरे जलमार्गों का बंद होना उनके देश में जीवन और आजीविका को कैसे प्रभावित करेगा। जब लोग चिंतित होते हैं कि चीन नौ वहन की स्वतंत्रता को सीमित करेगा, तो यह कोई मामूली, सैद्धांतिक मुद्दा नहीं है जिसकी केवल कानूनी पंचाटों में चर्चा की जाए।

संकट के दौरान ईरान या अमेरिका से शुल्क चुकाने के लिए मोलतोल करना किसी एक देश के हित में हो सकता है, लेकिन यह छोटी सोच है। सिंगापुर, जो मलक्का स्ट्रेट के जरिये होने वाले व्यापार से लाभ कमाता है लेकिन इसे सैन्य रूप से नियंत्रित नहीं कर सकता, पहले ही यह बात स्पष्ट कर चुका है। उसका आर्थिक अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि मलेशिया और इंडोनेशिया समुद्र के कानून में निर्धारित पारगमन मार्ग के सिद्धांत को मान्यता दें। वह इसे कमजोर होने की अनुमति नहीं दे सकता और उसने कहा है कि वह ईरान से बातचीत नहीं करेगा ।

पिछले 80 वर्षों में जीवन स्तर में भारी वृद्धि और गरीबी में तेज गिरावट अचानक नहीं हुई है। वह ऐसे मानदंडों का परिणाम हैं। जैसे नौ वहन की स्वतंत्रता, जो हमें अपनी समृद्धि में निवेश करने की अनुमति देती है। बिना हर छोटे राज्य से बातचीत किए या अपने व्यापारियों रक्षा के लिए जहाज भेजे। लेकिन ऐसे मानदंडों की रक्षा और पालन करना आवश्यक है।

अगर सचमुच युद्ध के बाद बनी वैश्विक व्यवस्था टूट जाती है, जैसा कि कुछ लोग चाहते हैं, और उसकी जगह किसी तरह की 'वैश्विक प्रतिस्पर्धी अराजकता' ले लेती है- भले ही उस नई व्यवस्था को 'बहुध्रुवीयता' जैसा कोई भारी-भरकम नाम दे दिया जाए या न दिया जाए तो हमें यह समझना होगा कि पिछले कुछ दशकों में व्यापार और विकास को सहारा देने वाले सिद्धांत शायद अब जिंदा न रह पाएं।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 24-04-26

अपनी ओर ध्यान खींचने की लड़ाई

सैयद अकबरूद्दीन, (पूर्व राजनयिक)

हमारे देश के लोगों को किसी विदेशी संकट की पहली खबर के लिए अब साउथ ब्लॉक से जारी होने वाली प्रेस विज्ञप्ति का इंतजार नहीं करना पड़ता, क्योंकि सोशल मीडिया पर आए वीडियो से उन्हें यह फौरन मिल जाती है। जब तक सरकार संकट की व्याख्या करती है, तब तक लोग उसे आत्मसात कर चुके होते हैं।

पश्चिम एशिया की जंग केवल जमीन, आकाश और समुद्र में ही नहीं लड़ी जा रही, बल्कि यह लोगों के मन में सबसे पहले अपने पक्ष की धारणा उतारने को लेकर भी लड़ी जा रही है। यह सबसे पहले अपनी ओर ध्यान खींचने की लड़ाई है, जो स्मार्टफोन स्क्रीन से शुरू होती है। जो पक्ष इस पर कब्जा कर लेता है, वह आगे बहुत सी चीजों को अपने मन मुताबिक पेश करने में सक्षम हो जाता है, चाहे टेलीविजन की बहस हो, अखबारी रिपोर्टिंग हो या फिर कूटनीति।

ईरान इस बात को बखूबी समझ गया है कि सूचना के पारंपरिक माध्यम आपको सूचना-प्रचार के संसार से बाहर कर सकते हैं, मगर सोशल मीडिया दुनिया भर में आपका संदेश फैलाता रहेगा। इस पक्ष की अहमियम को समझते हुए ईरान केवल

आधिकारिक बयानों या वैचारिक बयानबाजी तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने मीम्स, छोटे वीडियो, एआई-जनित दृश्यों, अंग्रेजी हास्य, नागरिकों की पीड़ादायक तस्वीरों के साथ संप्रभुता तथा प्रतिरोध की भाषा का भी इस्तेमाल किया। तेहरान ने सोशल मीडिया पर अलग-अलग दर्शकों के हिसाब से मैसेज तैयार किए।

ग्लोबल साउथ के लोगों के सामने उसने खुद को पीड़ित देश के रूप में पेश किया। अरब मुल्कों की जनता के एक हिस्से के सामने उसने खुद को पश्चिम-विरोधी प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। पश्चिमी देशों के सामने उसने इस संघर्ष को अमेरिकी अतिरेक के रूप में पेश किया और अक्सर नागरिकों की पीड़ा की तस्वीरों का इस्तेमाल करके नैतिक दबाव बनाने का प्रयास किया। ईरान ने साथ ही ऑनलाइन युवा यूजर्स को अपने पक्ष में करने के लिए सिद्धांतों के बजाय व्यंग्य, हास्य और इंटरनेट संस्कृति का भी इस्तेमाल किया। अमेरिका और इजरायल की सैन्य श्रेष्ठता के बावजूद, ईरान अक्सर संकट के ऑनलाइन आख्यान गढ़ने और उन्हें दुनिया के मन पर पहले चस्पां कर देने में ज्यादा फुर्तीला साबित हुआ।

हालांकि, इस फुर्ती के क्रम में अतिशयोक्ति भरे और झूठे दावे भी बड़ी संख्या में आ गए। अहम बात यह रही कि ऑनलाइन सामग्री शायद ही कभी वहीं तक सीमित रही। कोई मीम, चुटकुला या वीडियो क्लिप तेजी से टेलीविजन चर्चाओं, अखबारों की रिपोर्टिंग और कूटनीतिक टिप्पणियों में जगह बनाने लगा। इससे डिजिटल संदेशों को एक व्यापक राजनीतिक प्राणवायु प्राप्त होने लगी। इन संदेशों में जैसा लहजा ईरान ने अपनाया, उसका फायदा उसे मिला। ऑनलाइन दुनिया में दर्शक किसी एक आधिकारिक संदेश के इर्द-गिर्द जमे नहीं रहते, वे ऐसी भाषा के इर्द-गिर्द इकट्ठा होते हैं, जो उनके मिजाज के अनुकूल हो। हैदराबाद में ईरान का वाणिज्य दूतावास भी इस अभियान में कूद पड़ा। उसने एक्स पर लिखा- 'होर्मुज जलडमरूमध्य कोई सोशल मीडिया नहीं है, जहां कोई आपको ब्लॉक कर दे, तो आप पलटकर उसे ब्लॉक नहीं कर सकते।'

भारत में ईरान की कूटनीति सिर्फ राय बनाने तक सीमित नहीं रही है, वह यहां की राय को समझने की कोशिश भी करती रही। भारत में ईरान के आधिकारिक एक्स अकाउंट ने भारतीय यूजर्स के बीच इस्लामिक गणराज्य की सार्वजनिक कूटनीति पर एक जनमत सर्वेक्षण कराया। यह विडंबना ही है कि जो देश अपने यहां अभिव्यक्ति की आजादी नहीं देता, वह विदेशों में लोगों की अभिव्यक्ति पर सर्वेक्षण करा रहा है! इस मोर्चे पर अमेरिका और इजरायल अक्सर कम तत्पर दिखे। इजरायल का मैसेज अक्सर संस्थागत, सुरक्षा-केंद्रित और प्रतिक्रियात्मक रहा। अमेरिकी पैगाम बहुत व्यापक रहे, लेकिन उसका लहजा इस युद्ध की मांग के अनुकूल नहीं था।

इन परिस्थितियों के मद्देनजर भारत को अध्ययन करना चाहिए कि मौजूदा संकट के दौरान ईरान ने लोगों की सोच को ऑनलाइन कैसे प्रभावित किया, क्योंकि भविष्य में हर बाहरी संकट का मुकाबला सार्वजनिक तौर पर इसी तरह किया जाएगा। भारत का मूल्यांकन सिर्फ इसी बात से नहीं होगा कि वह क्या करता है, बल्कि इस बात से भी होगा कि वह जो कर रहा है, उसे कितनी तेजी और स्पष्टता से समझा पा रहा है। अब कोई भी विदेशी संकट तेजी से घरेलू राजनीति, बाजारों, प्रवासी भारतीयों की चिंता और सामाजिक तनाव में व्याप्त हो जाता है। कोई भी भ्रामक क्लिप किसी भी आधिकारिक स्पष्टीकरण के आने से पहले किसी भारतीय परिवार के ग्रुप में पहुंच सकती है। 'ऑपरेशन सिंदूर' से भी इसी तरह का एक सबक मिला है। किसी भी संकट के समय, सिर्फ कार्रवाई करना ही काफी नहीं होता, बल्कि सरकार को यह भी समझाना पड़ता है कि उसने क्या किया है और क्यों किया है। यह स्पष्टीकरण तेजी से आना चाहिए।

सच जरूरी होता है, लेकिन जो सच अफवाहों से पीछे रह जाए, वह अक्सर हार जाता है। किसी संकट के समय कोच्चि या पटना में बैठे माता-पिता बस ये जानना चाहते हैं कि हवाई अड्डा खुला है, उनका बच्चा सुरक्षित है और क्या वहां से निकलने के रास्ते हैं। ऐसी स्थितियों में काउंसलिंग, कूटनीति व लोगों से बातचीत, सब एक ही काम बन जाते हैं। भविष्य में विदेशों में मौजूद भारतीय दूतावासों को भी कूटनीति से कहीं बढ़कर काम करना होगा। उन्हें डिजिटल दुनिया में सबसे पहले मदद पहुंचाने वाला भी बनना होगा। भारत की विदेश नीति अक्सर संतुलित रहने और नीति के अनुरूप कदम उठाने पर टिकी है। लेकिन, आज के ध्रुवीकृत हो चुके मीडिया माहौल में इन खूबियों को अक्सर गलत समझा जाता है। संवाद अब सिर्फ अपनी बात पेश करने तक सीमित नहीं है, वह इस बात को भी तय करता है कि कोई देश कैसे काम कर रहा है और उसके कामों को किस तरह से समझा जा रहा है।

आगे के विदेशी संकटों के समय भी कूटनीति और सैन्य क्षमता की जरूरत पड़ेगी, पर ज्यादातर भारतीयों को उस संकट की जानकारी उनकी स्क्रीन पर आए संदेश से होगी। अगर भारत सरकार उस स्क्रीन तक पहुंचने में देर करती है, तो उसका बहुत सारा समय दूसरों द्वारा गढ़े गए नैरेटिव को झुठलाने में ही लगने लगेगा। आने वाले वर्षों में, बात न सिर्फ इससे तय होगी कि दुनिया भारत को किस नजर से देखती है, बल्कि इससे तय होगी कि भारत कैसे काम करता है।